Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July-December 2023 4(2), 110–117

IDEOLOGICAL BACKGROUND OF HINDI CINEMA IN THE ERA OF COLONIALISM

उपनिवेशवाद के दौर में हिंदी सिनेमा की वैचारिक पृष्ठभूमि

Ashutosh Kumar Rai [1]

[1] Research Scholar, DMCJ, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow, India

Received 22 May 2023
Accepted 16 August 2023
Published 21 August 2023

Corresponding Author

Ashutosh Rai,
ashutosh.rs.mcj@email.bbau.ac.in

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i2.2023.469

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The advent of Cinema in India happened under the British rule. At that time, the country was fighting colonialism by adopting a new political and cultural discourse. The presented research paper is based on the reciprocity of those ideological discussions with cinema, which starts from colonial India and extends till independent India. In this journey, various themes of silent cinema (Raja Harishchandra, 1913) and talkies (1931, Alamara), its struggle against colonialism, social and political commitments have been studied critically.

Hindi: सारांशरू भारत मे सिनेमा का सूत्रपात ब्रितानी हुकूमत के परिवेश में संपन्न हुआ। उस वक्त देश, एक नए राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्शों को अंगीकार कर उपनिवेशवाद से लड़ रहा था। प्रस्तुत शोध पत्र उन्ही वैचारिक विमर्शों का सिनेमा के साथ पारस्परिकता पर आधारित है, जिसकी शुरुआत औपनिवेशिक भारत से शुरू होकर आजाद भारत तक विस्तृत है। इस सफर में मूक (राजा हरिश्चंद्र,1913) और सवाक (1931,आलमआरा) सिनेमा के विविध प्रसंगों, उपनिवेशवाद के विरुद्ध उसके संघर्ष,सामाजिक और राजनैतिक प्रतिबद्धताओं का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है।

Keywords: Cinema, Colonialism, Politics, Silent Cinema, Hindi Cinema, सिनेमा, उपनिवेशवाद, राजनीति, मूक सिनेमा, हिंदी सिनेमा

1. प्रस्तावना

सिनेमा आधुनिक जनसंस्कृति का वह माध्यम है, जो सभी तत्कालीन कलाओं को सार्वभौमिकता प्रदान कर उसे आम जनमानस के लिए आसान बनाता है। किसी भी अन्य माध्यम की अपेक्षा सिनेमा न सिर्फ हमारा मनोरंजन करता है, बल्कि इस दुनिया को समझने की शक्ति भी प्रदान करता है। Gokulsing & Disanayake (2004) सिनेमा का सफर भारत में एक सदी का सफर है। इस दरम्यान सिनेमा के अंदर कई तरह के आंदोलनों ने उसकी रूपरेखा, भाषा, कथ्य, और तकनीकी में फेरबदल करने का प्रयास किया। यह आंदोलन या तो सिनेमा ने वैश्विक राजनीति से हासिल किया अथवा राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे उथलपुथल से इन आंदोलनों के महत्वपूर्ण घटक हैं, राजनैतिक चिंतन, सामाजिक तानाबाना, सांस्कृतिक आग्रह अथवा आर्थिक उन्नति, जैसा कि सर्वविदित है। भारत मे सिनेमा का सूत्रपात ब्रितानी हुकूमत के परिवेश में संपन्न

हुआ। उस वक्त देश, एक नए राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्शों को अंगीकार कर उपनिवेशवाद से लड़ रहा था। प्रस्तुत शोध पत्र उन्ही वैचारिक विमर्शों का सिनेमा के साथ पारस्परिकता पर आधारित है, जिसकी शुरुआत औपनिवेशिक भारत से शुरू होकर आजाद भारत तक विस्तृत है। इस सफर में मूक (राजा हरिश्चंद्र,1913) और सवाक (1931, आलमआरा) सिनेमा के विविध प्रसंगों, उपनिवेशवाद के विरुद्ध उसके संघर्ष, सामाजिक और राजनैतिक प्रतिबद्धताओं का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाना है।

2. दादासाहेब फाल्के और भारतीय सिनेमा

भारत में मूक सिनेमा की शुरुआत ब्रिटिश औपनिवेशिक फिल्मों से हुई। जिसमे अंग्रेजो को भारतीयों के मसीहा के रूप में दिखाया जा रहा था। फिल्में इस प्रकार बनाई जा रही थी, जिनमे ब्रिटिश लोग भारतीय समाज को सभ्य बनाते नजर आते थे। इन सबके जवाब में ही स्वदेशी फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ। इसका आगाज दादा साहेब फाल्के के फिल्मों से माना जाता है। Suman (2018) भारतीय सिनेमा (मूक सिनेमा) दादासाहेब फाल्के के राजा हरिश्चन्द्र के साथ शुरू होता है। फाल्के बम्बई के फोटोग्राफर, पेंटर, जादूगर थे। उन्होंने सिनेमा बनाने का निर्णय लाइफ ऑफ क्राइस्ट देखने के बाद लिया Rajadhyaksh (2020)। फिल्म देखने के बाद सम्बंधित सिनेमाई तकनीकियों को सीखने वह लंदन गए। इस तरह 1913 का साल भारतीय सिनेमा का ऐतिहासिक साल साबित हुआ। उन्होंने अपनी फिल्मों की कथा शुरुआत में पौराणिक रखी Kumar (2020)। इसके पीछे के प्रमुख कारणों को उस समय के सांस्कृतिक और सामाजिक रुझानों के माध्यम से समझा जा सकता है। यहां यह ध्यान देने वाली बात यह है, कि सत्यनिष्ठा और आदर्शों के मिथक से रची गई यह फिल्म महात्मा गांधी के भारत आगमन से पहले बनी। स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव भी दादासाहेब फाल्के पर बहुत गहरा था। उन्होंने अपनी निबंधों की कड़ी में सिनेमैटोग्राफी को फोटोग्राफी का अगला स्तर बताते हुए उसे राजनैतिक उद्देश्यों से ओतप्रोत बताया Rajadhyaksh (2020)। इसके साथ ही उन्होंने फिल्म निर्माण प्रक्रिया को भी स्वदेशी बनाए रखा। मिथकीय चरित्रों को केंद्र में रखकर बनाई गई उनकी फिल्मों में लंकादहन, सावित्री और भस्मासुर मोहिनी के नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

3. मूक सिनेमा का प्रारम्भिक दौर (1913 से 1920)

मुगल काल के बाद भारतीय लोकमानस पर भक्तिधारा और उसके साहित्य का भरपूर प्रभाव था। 'हिंदी साहित्य के इतिहास' नामक पुस्तक में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, 'जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले राज्य भी स्वतंत्र नही रह गए। इतने भारी राजनितिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छायी रही। अपने पौरुष से हताश समुदाय के लिए भगवान की शक्ति और करुना की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था''Shukla (2020).

इस तरह लम्बे समय से लोकमानस के मन में भक्ति की भावधारा भरी पड़ी थी। अंग्रेजी शासन के दुश्चक्र ने इस पीड़ा को और घनीभूत किया जिसके परिणामस्वरूप 20वी सदी की शुरुआत तिलक और गोखले जैसे राजनेताओं के आंदोलनों से हुई। कालांतर में महात्मा गाँधी का प्रादुर्भाव हुआ। देश में एक नवीन उर्जा संचरित होने लगी। इन विषम परिस्थितियाँ में सिनेमा खुद को कैसे स्वतंत्र रख सकता था। देश में लंबे समय से नवजागरण के लिए जरूरी सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श उभर रहे थे। प्रेस के आने के बाद उनका प्रसारण भी गतिशील हो चला था। प्रतीकों और मिथकों का प्रयोग खोए हुए, कुचले गये स्वाभिमान को फिर से हासिल करने के लिए तमाम विचारको और नेताओं द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा था।

ऐसे में भारतीय सिनेमा इन रुझानों से कैसे स्वतंत्र रह सकता था। यही कारण रहा की भारतीय सिनेमा की शुरुआत एक ऐसे मिथक से शुरू होता है। जो सत्य और निष्ठा के आदर्शों पर अपने प्राण तक न्यौछावर करने को आतुर है। साल 1913 में प्रदर्शित पन्द्रह हजार की लागत से बनी 3700 फिट लम्बी राजा हरिश्चन्द्र का निर्देशन फाल्के के द्वारा किया जाता है। फिर यही से शुरू होता है उनका और भारतीय सिनेमा का

सुनहला सफर, जो आजादी के बाद प्राणवान होते हुए आज दुनिया में अपने दबदबे और हर साल सर्वाधिक फिल्म प्रदर्शन का रिकार्ड कायम किये हुए है।

लाइफ आफ क्राइस्ट देखने के बाद दादा साहेब फाल्के को गोकुल और अवध का ऐसा ही जीवंत चित्रण करने की प्रेरणा मिली अपनी स्मृतियों में ठहरी कहानियों को रुपहले पर्दे पर उकेरने के लिए फिल्म उनके लिए एक अलहदा माध्यम ज्ञात पड़ा Dass (2009)। यही कारण रहा कि राजा हरिश्चंद्र के निर्देशन के बाद, लगभग अपनी सभी फिल्मों की कथावस्तु को दादासाहेब फाल्के ने पौराणिक रखा। अपनी दूसरी फिल्म मोहिनी भष्मासुर जो ऐतिहासिक रूप में इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि पहली बार किसी अभिनेत्री दुर्गा गोखले ने इसमें अभिनय किया था। इस फिल्म की कहानी भी भगवान विष्णु और भष्मासुर पर आधारित रही। 1914 में अपनी तीसरी फिल्म सत्यवान सावित्री की कहानी को भी उन्होंने लोक में उपस्थित पौराणिक आख्यान पर आधारित रखा। प्रथम विश्व युद्ध के समय फाल्के ने राम और सीता के चरित्र पर आधारित 'लंका दहन' का निर्माण किया। इसने दादा साहेब की लोकप्रियता में चार चांद लगा दिए। सीता का किरदार सालुंके ने ही निभाया था। जो राजा हरिश्चन्द्र में तारावती का किरदार निभा चुका था। ऐसा कहा जाता है कि फिल्म लंका दहन इतनी लोकप्रिय हुई की उससे हासिल रकम को पुलिस संरक्षण में बैलगाड़ी पर लादकर नासिक फाल्के निवास तक ले जाया जाता था। Kathariya (2013)

श्री कृष्ण जनम (1918) कालिया मर्दन (1919) इस दौर में प्रदर्शित उनकी अन्य फिल्में हैं। इस दौर में सती विषयक लगभग 31 फिल्मों का निर्माण हुआ Roy (2003)। संस्कृत के विद्वान अपने पिता से उन्होंने पुराणों उपनिषदों की कहानियां सुन रखी थी। बाद में फाल्के ने अपनी अंतिम रंगीन फिल्म गंगा अवतरण (1937) तक इन्हीं पौराणिक कथाओं को फिल्माने का प्रयास किया शुरूआती कामर्शियल सफलता अर्जित करने के बाद बाबा साहेब फाल्के ने हिंदुस्तान फिल्म कम्पनी का निर्माण किया और अपने सहयोगियों के साथ फिल्में निर्मित की बाद में उन्होंने डायमंड कम्पनी का निर्माण किया, इन दोनों संस्थाओं ने भारतीय सिनेमा के लिए तकनीकी शब्दावलियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यहाँ यह भी गौरतलब है कि फाल्के ने अपनी करियर की शुरुआत राजा रविवर्मा के सहयोगी के रूप में की थी। जिनकी कला यात्रा समूचे देश को पहली बार देवी देवताओं के चित्रों से मुखातिब कराने से सम्बन्धित है। वहीं भारतीय दर्शकों के लिए भी एक बार अपने देवी देवताओं को पर्दे पर देखने की ललक उनमें निहित कर्तव्यबोध, सदाचार, नैतिकता, ने सिनेमा को कला के रूप में लोकप्रिय कर दिया Sudhakar (2013)

पौराणिक कहानियों के प्रदर्शन से उस समय की तत्कालीन हुकुमत को भी परहेज नहीं था। यही कारण रहा कि फाल्के ने अपने फिल्म निर्माण को ऐसी कहानियों तक सिमित रखा। भारतीय सिनेमा में पौराणिक कहानियों का प्रचलन लम्बे समय तक बना रहा धीरे-धीरे अन्य विषयों की तरफ संचलन होना तब शुरू हुआ,जब भारतीय फिल्म निर्देशकों ने सिनेमा की लोकप्रियता को भुनाना शुरू किया, जबकि दादा साहब फाल्के के लिए यह सिर्फ धनार्जन नही था। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने इन मूल्यों से समझौता नही किया बम्बई और नासिक तक उनका संघर्ष चलता रहा और उनका अंत भी एक नामालूम व्यक्ति की तरह हुआ।

अपने दो दशकों की यात्रा में दादा साहेब फाल्के की फिल्मों का मूल स्वर पौराणिक आख्यान रहे लेकिन जैसे जैसे स्वतन्त्रता संघर्ष तेज हुआ। सिनेमा के विषयों में तब्दीली आनी शुरू हुई, गुजरात और बंगाल की पृष्ठभूमि से निर्माता निर्देशकों कि आमद होने लगी लिहाजा पौराणिक विषयों से कथा का झुकाव ऐतिहासिक फिल्मों की तरफ होने लगा।

4. ऐतिहासिक फिल्मों का दौर और 1920 से 1930 का दशक

मूक सिनेमा की शुरुआत दादा साहेब फाल्के से हुई, जिनके यहाँ पौराणिक विषयों की भरमार थी। माना जाता है कि मूक सिनेमा के दौर में लगभग 1300 के आसपास फिल्में बनी इनमें पौराणिक फिल्मों का वर्चस्व ज्यादे रहा लेकिन समय के साथ अन्य विषयों से सम्बन्धित फिल्मों का भी निर्माण होता रहा Dass (2009), 20 के दशक में सिनेमा के सर्वाधिक निकट रंगमंच के विषय तब ऐतिहासिक हो चुके थे। अपनी रोमांटिक प्रवृत्ति के कारण और पारसी रंगमंच के प्रभाव में थिएटर उस समय बम्बई, सूरत, कोलकाता, आदि बड़े शहरों में काफी लोकप्रिय हो चले थे।

वहीं साहित्य में नाटकों की एक प्राचीन विधा मौजूद थी। जिसका धीरे-धीरे संस्कृत से हिंदी में विस्थापन हो रहा था। रंगमंच विशेषकर पारसी थिएटर से जुड़े लोगों ने सिनेमा के सामर्थ्य को पहचानने में देर नहीं लगाई फिल्मों की बढ़ती लोकप्रियता के इसी दौर में भारतीय सिनेमा के प्रथम नायक-नयिकाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

बंगाल के पृष्ठभूमि से आने वाले धीरेन्द्र नाथ गांगुली तथा जेएफ मदान का नाम भारतीय सिनेमाई यात्रा में लेना बेहद महत्वपूर्ण होगा टैगोर के नेतृत्व में बंगाल,नवजागरण से गुजर रहा था। कला, साहित्य, नृत्य और रंगमंच पर टैगोर का व्यापक असर था। बंगाल के शिक्षित युवा वर्ग को इस आदर्शवादी भावना ने काफी प्रेरित किया जिनमें मदान और धीरेन्द्र नाथ गांगुली का नाम सिनेमा के लिए महत्वपूर्ण है Massey (1974)।

मदान की पहली फिल्म नल दमयन्ती (1921) थी। तो वहीं धीरेन्द्रनाथ गांगुली की विलेत फेरात (इंग्लैंड रिटर्न 1921) थी। जिसकी कहानी में हास्य और व्यंग के पुट थे। लेडिज टीचर और मैरिज टानिक दोनों साल 1922 में प्रदर्शित हुई इनकी कहानी भी हास्य और व्यंग से सराबोर थी। लेकिन साल 1924 में गुलाम वंश के शासक इल्तुतमिश की बेटी रजिया सुल्तान पर उन्होंने रजिया बेगम का निर्माण किया फिल्म का निर्माण हैदराबाद के निजाम के सहयोग से सम्भव हुआ था। दो साल बाद उन्होंने एम्बर पैलेश राजस्थान में रानी पद्मिनी के जीवन पर आधारित फ्लेम आफ फ्लेश का निर्माण किया, ऐसी ऐतिहासिक फिल्मों का निर्माण तीसरे दशक में सर चढकर बोला इन फिल्मों के निर्माण के पीछे उस दौर में लगाए गये औपनिवेशिक प्रतिबन्ध मुख्य थे। चुकी फिल्म तकनीकी और उसके स्थानातंरण के लिए लगने वाला बजट दोनों एक गुलाम देश के निर्देशकों के लिए अवहेलना अथवा नजरंदाज की चीज नही थी। ऐसे में एहतियातन ऐसे विषयों पर फिल्में प्रदर्शित करना एक मुश्किल काम नही था।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में गाँधी का उत्कर्ष चरम पर था। वहीं रसियन क्रांति के साम्यवादी प्रभाव के कारण भारत में भी क्रांतिकारी उथल-पुथल पुरजोर थे। भगत सिंह और उनके साथियों का प्रभाव आम जनमानस में व्यापक हो रहा था। इन्हीं सब विषमताओं को देखते हुए ब्रितानी हुकुमत ने सिंमैतोग्राफ कमिटी का गठन किया जिसमें तीन भारतीय और तीन यूरोपीय सदस्य थे। कमिटी का मूल मकसद था सिनेमा के लिए आवश्यक निर्बंधनों का रेखांकन कमिटी ने अपने रिपोर्ट को पांच खंडों में प्रकाशित किया। जिसके अंतर्गत सेंशरशिप, सांप्रदायिकता के प्रश्न तथा पाश्चात्य संस्कृति के फिल्मांकन से जुड़े मसलों पर महत्वपूर्ण सुझाव थे Massey (1974)।

विश्व युद्ध के बाद भारत और यूरोप काफी प्रभावित हुए जिसके कारण अमरीकी फिल्म उद्योग ने औपनिवेशक राज्यों में अपनी पकड़ मजबूत कर ली जो भारतीय फिल्म उद्योग के लिए भी खतरे की घण्टी थी। ठीक इसी वक्त भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अपने आखिरी मुकाम पर था। यह एक ऐसा समय था,जब बिना अपने इतिहासबोध के औपनिवेशिक सरकार से लड़ना सम्भव नही था। यही कारण रहा कि सिनेमा ने भी ऐतिहासिक घटनाओं को आधार में रखकर अपनी अभिव्यक्ति तेज कर दी। ऐतिहासिक फिल्मों की तरफ रुझान का मुख्य कारण था, औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध स्वदेशी अभिमान का निरूपण, इस दौर के निर्माता निर्देशकों में बंगाल के हिमांशु राय का नाम उल्लेखनीय है। लंदन से पढ़ाई-लिखाई करने के बाद उन्होंने पहले पहल लाइट ऑफ एशिया (1925) का निर्माण किया। जो की भारतीय प्रायद्वीप से निकले एक राजकुमार के बुद्ध हो जाने पर आधारित थी। यह फिल्म अडविन अर्नाल्ड की कविता का फिल्मी रूपान्तर थी। चुकी उनकी शुरुआत शांति निकेतन से हुई थी ऐसे में उनपर बंगाल के नवजागरण का भरपूर प्रभाव था। आगे जाकर उन्होंने विदेशी सहयोग से (यूएफए) से शिराज(1928) और अगले वर्ष थ्रो आफ डाईस का निर्माण किया इन तीनों फिल्मों को फ्रेंज आस्टेन ने निर्देशित किया। शिराज मुख्य रूप से शाहजहाँ, सलीमा (बाद में मुमताज महल) और शिराज के त्रिकोणीय प्रेम कहानी है। फिल्म दुनिया भर में ताजमहल के निर्माण से जुड़े वैकल्पिक इतिहास को उजागर करती है। भारतीय मूक सिनेमा से सम्बन्धित समझ जहाँ उस समय तक केवल दादासाहेब फाल्के की मिथकीय फिल्में भारतीय इतिहास को मिथकीय हिन्दू धर्म के सांचे में देख रही थी, वहीं हिमांशु राय की इस फिल्म ने भारत के विविधता भरे इतिहास को उजागर किया साथ ही मुगलों को भारतीय इतिहास का मुख्य अंग दर्शाया मिथक आधारित उस सिनेमा के दौर में त्रिकोणीय प्रेम कहानी पर फिल्म बना कर भारतीय सिनेमा में एक नयी संकर शैली-रोमांटिक इतिहास की रचना की Suman (2018) हिमांशु राय भारतीय सिनेमा के मूक दौर को शैलीगत रूप से परिवर्तनशील बनाते रहे, उन्होंने सामाजिक असमानता पर अछूत कन्या (1936) जैसी फिल्मों का निर्माण

किया पूना पैक्ट और उसके बाद हरिजन उद्धार को लेकर अम्बेडकर और गांधी के बीच चल रही बहसों से सिनेमा कैसे वंचित रह सकता था। इस दशक में संत तुकाराम जैसी फिल्में भी प्रचारित हुई, जो अम्बेडकर और राष्ट्रीय आंदोलन के बीच उनके हस्तक्षेपों को बारीकी से बयां करती है। हिमांशु राय ने देविका रानी के साथ 1933 मे कर्मा का निर्माण किया जिसके कारण देविका रानी रातों-रात एक सनसनी की तरह सिनेमाई परिदृश्य पर छा गई, हिमांशु राय की अछूत कन्या ने उनको अंतराष्ट्रीय ख्याति दिलाई इस प्रभाव का असर उस दौर के अन्य सिनेमा निर्देशकों पर पड़ा जिसका विवरण हम आगे देखेंगे। सदी का तीसरा दशक अमरीकी प्रभाव वाले फिल्मों के जद में रहा, फिर भी बंगाल और देश के अन्य हिस्सों से सिनेमा की समझ रखने वाले लोगों का आगमन ने इस प्रभाव को असीमित नही होने दिया। तीसरे दशक में उन्होंने भारतीय मूक सिनेमा को विविध प्रसंगों से अवगत करा उसे एकांगी होने से बचाया। वहीं तकनीकी विकास के साथ भारतीय सिनेमा में नायक-नायिकाओं ने अपनी उपस्थिति बुलंद की, जिसके कारण फिल्म सिर्फ कथा और तकनीकी से इतर मानवीय पहलुओं,सामाजिक कुरूतियों से भी रूबरू होने लगी।

5. सवाक सिनेमा का दौर और हिंदी सिनेमा का उदय (1930 से 1940 का दशक)

हिंदी सिनेमा से यहां तातपर्य है, फिल्मों के माध्यम से हिंदी, हिंदुस्तानी ध्वनियों का पहली बार प्रयोग, चुकी सवाक सिनेमा के दौर से पहले फिल्में ध्वनि और संवाद विहीन थी। ऐसे में उनको किसी अमुक भाषा का सिनेमा नही कहा जा सकता है। सिनेमा में ध्वनि के विस्तार ने संवाद-गीत-संगीत के रास्ते सुगम किए। इस तरह एक माध्यम के रुप में सिनेमा ने अपनी वास्तविक क्षमता के साथ दर्शकों के बीच जाना शुरू किया। भारतीय सिनेमा के इस चैथे दशक ने काफी नए कलेवर की फिल्में दी,जो सामाजिक और राजनैतिक रूप में पिछले दोनो दशकों से हर मामले में अलग थी। यहां यथार्थ की आहट थी। समाज की वस्तुस्थिति से जूझने का तेवर और उसपर प्रहार के साथ मनुष्यता से जुड़े प्रश्न थे।

जैसा की सर्वविदित है कि पहली बोलती फिल्म का खिताब अर्देशिर ईरानी के आलमआरा(1931) के पास है। फिल्म ने अप्रत्याशित सफलता अर्जित की. इस फिल्म के साथ ही हिंदी सीने संगीत की दुनिया का भी सूत्रपात हुआ। वजीर मोहम्मद खान ने दे दे खुदा के नाम पर प्यारे गाकर पहला प्लेबैक गायक बनने का ओहदा कायम किया. वहीं फिल्म की अभिनेत्री जुबैदा ने स्त्री स्वर को साधा। प्रेम कहानी को केंद्र में रखकर बनी यह फिल्म आज प्रिंट में उपलब्ध नही इसलिए इसके बारे में महज संक्षिप्त सूचनाएं ही मौजूद है।

तीसरे दशक की शुरुआत में बनी आलमआरा सिनेमा को एक अलग मुकाम तक ले जाने वाली फिल्म मानी जाती है। इस फिल्म के बाद बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के निर्माता निर्देशकों ने बहुत जल्द अपनी शोहरत और प्रतिभा से विश्व को चकित कर दिया। इस दौर के महत्वपूर्ण निर्देशकों में हिमांशु राय और वी शांताराम का नाम उल्लेखनीय है। हिमांशु राय के बारे में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। वे एकमात्र निर्देशक थे जो विदेशी फिल्म निर्माणी कम्पनियों के साथ मिलकर काम कर रहे थे। सपत्नीक भारत लौटने के बाद उन्होंने कर्मा का निर्देशन किया। उसके एक दृश्य की आज भी चर्चा होती है। यह हिंदी सिनेमा का पहला अंतरंग दृश्यों में शुमार है। ऐसा उस रूढ़ और परम्पराओ ने जकड़े काल में फिल्माना उनकी अलहदी सोच को रेखांकित करती है।

उस दौर में पर्दे पर नायिकाओं की उपस्थिति लगभग न के बराबर थी। ऐसे में देविका रानी ने भारतीय सिनेमा में एक सनसनी को उम्मीद दी, जिसके बाद रूढ़ियों की अकड़न कम होने लगी। सीने तारिकाओं से हिंदी सिनेमा जगमगाने लगा। 1933 में निर्देशित कर्मा ने भारतीय फिल्म उद्योग को एक नई राह मुकर्रर की उनमें सबसे महत्वपूर्ण था, कला के अन्य पहलुओं मसलन गीत-संगीत, नृत्य आदि के लिए एक नया फलक कला के शास्त्रीय माध्यमो को भावपूर्ण बना उसे एक कथा के सहारे दर्शकों के बीच पहुंचाना, यह अपने आप में एक नया प्रसारण था।

अमरीकी फिल्मों का दौर भारतीय सिनेमा में ध्वनि के अवतरण के बाद अवसान पर आने लगा। जैसे ही सवाक फिल्मो का दौर शुरू हुआ। दर्शकों को अपनी देशज चीजें देखने और सुनने को मिलने लगी। भारतीय रंगमंच प्राचीन काल से ही गीत-संगीत-नृत्य से सराबोर शैली थी। इसलिए सिनेमा में इस संस्कृति

के उद्भव ने उसे लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने में कोई कसर नही छोड़ी Massey (1974)। इस दौर में म्यूजिकल फिल्मों ने जबरदस्त धूम मचाई गीतों की लोकप्रियता का आलम ऐसा था कि फिल्म इंद्रसभा में 5 दर्जन से अधिक गीत प्रदर्शित किए गए। इस तरह की संगीत प्रधान फिल्मों में कहानी अनुपस्थित होती थी। व्यावसायिकता के कारण इन फिल्मों के प्रदर्शन में इनके गीत-संगीत कारगर होते थे।

मूक फिल्में कथा-सन्देश और नायक प्रधान होती थी। ध्वनि के कारण अब फिल्मों के लिए गायक-गीतकार-संवाद लेखक-संगीतकार की अनिवार्यता आन पड़ी. इस तरह सिनेमा से फिर कला के हर पहलू से जुड़ाव रखने वाले लोगों ने बम्बई कूच किया, वही व्यापारिक हितों के लिए इस दौर ने कला के साथ समझौते भी किए स्थिति यहां तक आ गई कि संगीत और नृत्य से सम्पन्न भारतीय संस्कृति का क्षरण भी खूब हुआ Massey (1974)। चंदूलाल शाह द्वारा निर्मित गणसुन्दरी (1934), पिसी बरुआ द्वारा निर्देशित देवदास (1935) और प्रभात फिल्म कम्पनी द्वारा निर्मित सन्त तुकाराम-मराठी (1938) को छोड़ दिया जाए तो इस दौर में सांगीतिक फिल्मों का वर्चस्व रहा, फिर भी इन फिल्मों को देश और उसके बाहर काफी सराहा गया। इस दौर में फिल्में सुखांत प्रधान होती थी। जो आज भी लगभग इसी रवैये के साथ बदस्तूर जारी है। ऐसा इसलिए भी था क्योंकि भारतीय दर्शन में दुःख की जगह जगत को माया कहा गया है, इसलिए फिल्मों का अंत ट्रैजडी से इतर था। देवदास, अछूत कन्या जैसी फिल्मों को हटा दिया जाए तो लगभग सभी फिल्में अपने क्लाइमेक्स में पोएटिक जस्टिस (काव्यात्मक न्याय)को तरजीह देती रही, पीसी बरुआ की देवदास शरतचन्द्र के उपन्यास पर आधारित थी तो वहीं अछूत कन्या एक ब्राह्मण युवक के प्रेम प्रसंग की कहानी थी,जो आज भारतीय सिनेमा के क्लासिकी में शुमार है। वी शान्ताराम की प्रभात कम्पनी द्वारा बनाई गई सन्त तुकाराम ने वेनिस में खिताब अर्जित कर भारतीय सिनेमा को एक अंतरराष्ट्रीय पहचान दी। शान्ताराम ने इसी दशक में अमर ज्योति और आदमी का निर्माण 1936 में किया। जिनके विषय सामाजिक तनाव से भरपूर थे। जहां आदमी की कहानी एक वेश्या के सम्मानपूर्ण जीवन जीने पर आधारित थी। वही अमर मूर्ति(1934) और अमर ज्योति की कहानी पौराणिकता और ऐतिहासिकता के रंगों में सराबोर थी. अमर ज्योति की सौदामिनी समाज की पितृसत्ता से आजिज आकर एक बगावत और जरायम की दुनिया मे प्रवेश कर जाती है। इन दोनों फिल्मों के केंद्र में शान्ताराम ने उस दौर में स्त्रियों को तरजीह दी। 1937 में प्रदर्शित उनकी फिल्म दुनिया न माने मास्टरपीस मानी जाती है। इस फिल्म के केंद्र में भी स्त्री थी। यहां तक की इस फिल्म को बीसवीं सदी के दृश्यकाव्य कहा गया Roy (2003)। आलमआरा का पहला गीत गाया था, वजीर मोहम्मद खान ने गीत के बोल थे 'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे अगर कुछ देने की चाहत हो', तीसरे दशक के सिनेमा के पास गीत-संगीत की उपस्थिति को नजरअंदाज करना वर्तमान फिल्म उद्योग को समझने में मुश्किल पैदा कर सकता है लेकिन दुर्भाग्यवश आलमआरा के गीत रिकॉर्ड आज मौजूद नहीं हैं। बाद में माधुरी फिल्म के निर्माण के बाद गीतों के रिकॉर्ड का चलन बढ़ा आज भी माधुरी फिल्म में गाए गीत शास्त्रीय गायक विनायक पटवर्ध न की आवाज में संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

फिल्मी गीतों की लोकप्रियता का असर ऐसा हुआ की उस दौर में गीत-संगीत प्रधान फिल्मों की बाढ़ आ गई, न्यू थिएटर्स, प्रभात स्टूडियों और बाम्बे टाकीज ने सिनेमा के संगीत निर्माण को काफी रोचक बनाया। राय चंद बोराल, सरस्वती देवी (मिनोचर होमजी), पंकज मलिक, तिमिर बरन इन स्टूडियों से जुड़े महत्वपूर्ण संगीतकार थे। इन संगीतकारों ने उस दौर में यादगार धुनों का निर्माण किया. सामाजिक विषयों पर फिल्म बनाने के लिए प्रसिद्ध बॉम्बे टॉकीज की फिल्मों में 'अछूत कन्या', 'बंधन', 'झूला', 'जीवन नैया' अपनी कथावस्तु के साथ ही अपने संगीत के लिए भी दर्शकों के बीच सराही गई। न्यू थिएटर्स ने टैगोर, शरतचंद्र को आधार बनाकर फिल्मों का निर्माण किया तो वहीं प्रभात फिल्म ने अयोध्या के राजा, अमृत मंथन जैसी फिल्मों के निर्माण में संगीत के पक्ष को सिनेमा में रेखांकित करने का प्रयास किया। स्टूडियो के निर्माण के कारण उसमें गीत-संगीत के लिए अलग प्रभाग की शुरुआत होना चैथे दशक की सिनेमा की मूल प्रवृत्ति भी है। क्योंकि इससे पहले मूक सिनेमा में यह संभव नहीं था। कुंदन लाल सहगल तक अभिनेता ही गायक की भूमिका में रहा लेकिन धीर-धीरे पार्श्व गायन की शुरुआत हुई. साल 1935 में न्यू थिएटर्स द्वारा निर्देशित फिल्म धूप-छांव में पारुल घोष का स्वर पार्श्व-गायन की पहली आवाज बनी। इस दौर की फिल्मों में अधिकांश गीत-संगीत भजन और मुजरे की श्रेणी के होते थे। न्यू थिएटर्स के संगीतकारों को बाद में संगीत के योगदान के लिए दादा साहब फाल्के पुरस्कार से नवाजा गया, पंकज मलिक, बोराल और कानन देवी न्यू थिएटर्स के महत्वपूर्ण संगीतकार थे।

इस तरह भारतीय सिनेमा का चैथा दशक आविष्कारों और तकनीकियों के मिश्रण तथा सिनेमा में नए प्रयोगों का दशक बना। वह पहली बार रैखिक से चक्रीय हुआ और बहुआयामी कलाओं को समेटकर अपनी क्षमता को भारतीय जनता के बीच रेखांकित करने में सफल हुआ। आज समूचा भारतीय फिल्म उद्योग चैथे दशक में अंगीकार की गई सिनेमाई परिपाटी से खुद को अलग नहीं कर सका है. इसलिए अगर कहा जाए कि वर्तमान भारतीय सिनेमा का मूर्त रूप चैथे दशक में अवतरित हुआ तो यह कहीं से अतिशयोक्ति नहीं होगा।

6. निष्कर्ष

अपने प्रारम्भ में भारतीय सिनेमा सीमित संसाधनो, ज्ञान के अभाव और अंग्रेजी हुकूमत के कारण कला के रुप में अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्षरत रहा. फाल्के और उनके बाद के निर्देशकों ने सिनेमा की अवधारणा को सबसे पहले पौराणिकता और राष्ट्रीयता के साथ जोड़ने में सफलता अर्जित की वहीं तीसरे दशक के सिनेमा ने इसे सामाजिक और सांस्कृतिक मोर्चे पर उकेरा, औपनिवेशिक सरकार ने प्रेस के समानांतर सिनेमा को भी अंग्रेजी हुकूमत के लिए खतरनाक माना, फिर भी भारतीय निर्देशकों ने अभिव्यक्ति के खतरे उठाए और बहुआयामी सिनेमा का निर्माण कर भारतीय सिनेमा की आधारशिला को मजबूती प्रदान की, जहां दूसरे दशक का सिनेमा पौराणिकता और बहुसंख्यक हिंदुओं के नायकों, देवी-देवताओं के चल चित्रण पर आधारित था तो वहीं तीसरे दशक में सिनेमा ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण रोचक तरीके से करके दुनिया में ख्याति अर्जित की एक देश के रूप में अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत इस देश को भारतीय सिनेमा ने इसके सांस्कृतिक चेतना को रुपहले पर्दे पर जीवित कर संघर्ष के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया। दूसरी तरफ इस देश मे व्याप्त सामजिक कुरीतियों और रुढ़ियों की जमकर आलोचना भी की, इस तरह से देखने पर भारतीय सिनेमा का तीसरा दशक व्यक्तिगत सिनेमा से लेकर सामूहिक सिनेमा तक अपनी यात्रा के लिए जाना जाएगा। जहां व्यक्तिगत सिनेमा का अर्थ है, निर्देशक और उसके एकल प्रयास से निर्मित सिनेमा. वहीं सामूहिक सिनेमा से तात्पर्य है स्टूडियों में तैयार सिनेमा जो विभिन्न व्यक्तियों के नियोजन से निर्मित हो रहा था।

इस दौर का सिनेमा भारतीय शास्त्रीय और लोकगीत के समानांतर सिने गीत-संगीत के प्रादुर्भाव के लिए भी जाना जाएगा, साथ ही इस दौर में हिंदी-उर्दू स्फीयर में रचे जा रहे साहित्य से भी प्रथम परिचय के रूप में इसका अवलोकन होता दिखाई देता है। संगीत की उपस्थिति के कारण सिनेमा का प्रचार गानों के माध्यम से दूर-दराज तक आसनीं से होने लगा इसलिए तीसरे दशक के सिनेमा को सिनेमा उद्योग और पूंजी के निर्माण और लाभ के उद्देश्य से फिल्म निर्माण के रूप में भी देखा जाना चाहिए। शुरूआती के दो दशक तक भारतीय सिनेमा और उस दौर की राजनितिक उथलपुथल के बीच सीधा सम्बन्ध नही दिखता, लेकिन भक्त विदुर और द मील जिसे कथा सम्राट प्रेमचन्द ने लिखा था। दोनों पर औपनिवेशिक बंदी, इस दिशा में जरुर ध्यान आकृष्ट करती हैं कि औपनिवेशिक हुकुमत व्यापारिक हितों के उपर औपनिवेशिक हितों को महत्व देने पर आमादा थी। वरना जिस तकनीकी के लिए भारतीय सिने उद्योग प्रत्यक्ष रूप से लन्दन पर निर्भर थी. उसको हतोत्साहित करने का कोई अन्य कारक नही हो सकता है।

शुरुआती तीन दशकों में भारतीय सिनेमा ने अंतराष्ट्रीय स्तर पर तो अपनी पहचान बनाई ही साथ ही उसने विभाजन के बाद भी छठे दशक में खुद को प्रभावित नही होने दिया। ऐसा उसके सामजिक और राजनैतिक प्रतिबद्धता के बिना सम्भव नही हो सकता था। मजहब और मुल्क से ऊपर उठकर उसने कला पर यकीन किया। साहिर हो या दिलीप कुमार सभी की सफलता के पीछे बम्बई का हिंदुस्तान और हिन्दुस्तानी में जबरदस्त यकीन इसी बात की ओर इशारा करते हैं।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Dass, M. (2009). The Crowd Outside the Lettered City: Imagining the Mass Audience in 1920s India. Cinema Journal, 48(4), 77-98. Retrieved From 2020, November 30.

Gokulsing, M., & Disanayake, W. (2004). Indian Popular Cinema : A Narrative of Cultural Change. Treanthem Books.

Kathariya, D. (2013). Bahuvachan, 39. MGHAV.

Kumar, J. K. (2020). Mass Communication in India. Jaico Books.

Massey, R. (1974). The Indian Film Industry. Journal of the Royal Society of Arts, 122(5214), 369-381. Retrieved From 2020, November 30.

Rajadhyaksh, A. (2020). Indian Cinema : A Very Short Introduction. Oxford University Press.

Roy, P. (2003). Cinema as Social Discourse. Proceedings of the Indian History Congress, 64, 1185-1191. Retrieved From 2020, December 1.

Shukla, R. (2020). Hindi Sahitya ka Itihas. Sahitya Sarovar.

Sudhakar, S. (2013). Bahuvachan, 39. MGHAV.

Suman, S. (2018). Sarvdeshiktavad aur Hindi Cinema. Pratiman. Vani Prkashan.